(पाश की कविताऐं)

युद्ध : कुछ प्रभाव

1.
झूठ बोलते हैं
ये जहाज, बच्चों!
इनका सच न मानना
तुम खेलते रहो
घर बनाने का खेल

2.
ठंडा चांद देख रहा बिटर–बिटर
कोहरे में उतर रही हवाई छतरी
डोरियों में फ़ंसी हुई लाश
आओ देखो
उन्होंने कीमत डाली है
पौष की चांदनी की
आओ देखो–
उनके काम आई है
ग़रीब की जवानी...

3.
रेडियो से कहो
कसम खाकर तो कहे
'धरती' गर मां होती है तो किसकी?
यह पाकिस्तानियों की क्या हुई?
और भारतवालों की क्या लगी?

4.
चोरों, ओ चोरों
अपनी लूट बांटने के लिये
कहीं बाहर जाकर लड़ो
जाग ही न उठें कहीं घरवाले
सुना है
बुरी होती है भीड़ की पिटाई...

5.
वे रेडियो नहीं सुनते
अखबार नहीं पढ़ते
जहाज खेतों में ही दे जाते हैं खबर सार
हल को मुट्ठी में कसकर
वे केवल हंस देते हैं
क्योंकि वे समझते है
कि हल की फाल पगली नहीं
पगली तो तोप होती है
हम अंधेरे कोनों में
गुमसुम बैठे सोच रहे हैं
और पल–भर में चांद उगेगा
भुरभुरा–सा
लुटा–लुटा–सा
तो बच्चों को बताएंगे
इस तरह का चांद होता है?

2.
संविधान
यह पुस्तक मर चुकी है
इसे न पढ़ें
इसके शब्दों में मौत की ठंडक है
और एक–एक पृष्ठ
जिंदगी के आखिरी पल जैसा भयानक
यह पुस्तक जब बनी थी
तो मैं एक पशु था
सोया हुआ पशु...
और जब मैं जगा
तो मेरे इंसान बनने तक
यह पुस्तक मर चुकी थी
अब यदि इस पुस्तक को पढ़ोगे
तो पशु बन जाओगे
सोए हुए पशु।

पेज 1 का शेष भाग

हत्यायें करना हुआ आकर्षक : अदालत व पुलिस मूक दर्शक

आज न कानून से और न इसे लागू करने वाली पुलिस एवं न्यायपालिका से कोई आदि अपराधी डरता है। डरता है तो केवल शरीफ़ आदमी। शरीफ़ आदमी की तो बल्कि दोहरी मार है। वह कानून व इसको लागू करने वालों से भी डरता है और अपराधियों से भी। अक्सर देखने सुनने में आता है कि पुलिस, अदालत एवं कानून की व्यवस्था से निराश आदमी अपराधियों को रंगदारी देकर गुजर बसर करते हें।

आइये नरेन्द्र हत्याकांड को देखें। इससे ज़्यादा पुलिस अदालत एवं कानून की लचरता क्या होगी कि वह बार-बार कह रहा है कि प्रमुख गवाह होने के नाते उसकी हत्या होने वाली है और वह हो भी गयी। पौने तीन साल के समय में जो व्यवस्था एक हत्या केस का फ़ैसला तो दूर गवाहियां तक पूरी नहीं कर सकी, उससे कोई क्या उम्मीद कर सकता है? इतना ही नहीं भाई के मुकदमे की पैरवी पर वह लाखों रुपया खर्च कर चुका था, केवल इसलिये कि उसके परिवार को न्याय मिल सके। उधर आरोपी पक्ष भी कम नहीं रहा। उसने अपने बचाव के लिये करोड़ों रुपये खर्च कर डाले और आगे भी करते रहेंगे। जब न्याय-व्यवस्था व्यापार बन जाय, पैसे का खेल बन जाये वहां न्याय मिल भी कैसे सकता है? न्याय के इस खेल में अब हर चीज़ तो बिकने लगी है।

जब भी कहीं अपराध होता है तो एकमात्र पुलिस का ही चेहरा दोषी के रूप में सामने आता है। उक्त दोनों केसों में भी सारा ठीकरा पुलिस के सिर पर ही फूटा। सारी लानत मलानत पुलिस पर ही डाली गयी। नरेन्द्र के शव को ले जाकर उसके लोगों ने पुलिस कमिश्नर के दरवाज़े पर रख दिया और घंटों हटाया नहीं। शशि की मौत पर भी जनता ने पुलिस कमिश्नर को ही मौके पर तलब किया। लेकिन यह समझने की कोशिश कोई नहीं करना चाहता कि राजनेताओं और अदालतों ने पुलिस वालों को किसी काम का छोड़ा ही नहीं।

पुलिस तो आज केवल राजनेताओं के हाथ की कठपुतली बन कर रह गयी है। दूसरी तरफ अदालतों में मुकदमे खिंचते जाते हैं और गवाह मरते रहते हैं।

भर्ती से लेकर तैनातियों तक सब जगह पुलिस पर राजनेताओं का नियन्त्रण है। इस क्रम में पहले तो छांट-छांट कर निकम्मे व भ्रष्ट लोगों को भर्ती करना और फ़िर उन्हें बेलगाम लूटने पर लगा देना आम बात हो गयी है। ये लोग या तो पार्टी के कार्यकर्ता होते हैं या रिश्तेदार या फ़िर पैसे के बल पर भर्ती होते हैं और तैनाती लेते हैं। पात्रता एवं जनहित की तो कोई प्राथमिकता ही नहीं रह गयी है। ज़िले थाने, चौकियां सब नीलामी पर लगे हुए हैं। पुलिस में ट्रेनिंग न तो कोई देना चाहता न कोई लेना चाहता। हर कोई पैसे के चक्कर में रहता है। एक-आध कोई इस चक्कर से बाहर रह कर काम करना भी चाहे तो उसे व्यवस्था पसन्द नहीं करती।

एक पुरानी मान्यता है कि पुलिस की मर्ज़ी के बगैर कोई गुंडा इलाके में पर नहीं मार सकता। बिल्कुल ठीक है। परन्तु जब इस वोटतंत्र में गुंडा ही राजनेता बन जाये तो पुलिस क्या करे? पुलिस तो उसे सलाम ही करेगी। आज पुलिस किसी गुंडे, मवाली, अपराधी पर ज्यों ही हाथ डालती है तो वह तुरन्त नेता को फ़ोन मिला कर रिसीवर पुलिस वाले को पकड़ा देता है। इस तरह के माहौल में किसी पुलिस वाले को क्या पड़ी है जो पंगा ले, वह भी नोट छापने में अपनी हिस्सा पत्ती क्यों गंवाए?

उपरोक्त दोनों मामलों में तय है कि मुल्ज़िम देर सबेर पकड़े जायेंगे। यह भी तय है कि उनके मामले अदालतों के सामने भी जायेंगे। पर इससे यह तय नहीं होगा कि अपराधियों को सज़ा मिलेगी या उनकी अन्य आपराधिक गतिविधियों पर कोई लगाम लगेगी। इससे यह भी तय नहीं होगा कि आम नागरिक को कानून व्यवस्था से सुरक्षा की आशा करनी भी चाहिये या नहीं। इसकी गारंटी कौन देगा कि इन हत्याओं के गवाहों को नहीं मारा जायेगा। न कोई यह विश्वास दिला सकता है कि मुकदमों का निपटारा हफ़्तों या महिनों में हो जायेगा। कानून-व्यवस्था की इस बेशर्मी में सभी जो शामिल हैं-राजनेता, अदालत, पुलिस!

राजकीय नेहरू कॉलेज: सीटों के बिना ही सीटें बढ़ा दीं सरकार ने

प्रिंसिपल ने कहा कि यदि इन्फ़्रासट्रक्चर पर्याप्त हो तो उन्हें दाख़िले देने में क्या समस्या हो सकती है? कोई नहीं, वे तो खुश होंगी अधिक से अधिक बच्चों को दाखिला देकर।

इतना कह कर प्रिंसिपल महोदया तो राऊंड पर चली गयीं, लेकिन दो प्राध्यापक इस संवाददाता के पास आकर बैठ गये। उनमें से एक तो सेवानिवृत हो चुकने के बाद बतौर गैस्ट प्राध्यापक काम कर रहे हैं। इन लोगों ने बताया कि प्राध्यापकों की कमी को 'गैस्टों' के द्वारा पूरा करने का प्रयास किया जा रहा है। विज्ञान विषयों के लिये तो गैस्ट भी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पा रहे हैं। मिलें भी तो कैसे एम.एस सी पी एच. डी. व नेट क्वालिफाइड को सरकार रखना चाहती है 15000 मासिक पर, वह भी साल में 6 माह के लिये, जबकि इसी कॉलेज के चपरासी पा रहे हैं 15 से 25 हज़ार मासिक तक और वह भी पक्की नौकरी के साथ। ऐसे में उच्च-शिक्षित कैसे मिल सकते हैं इन दामों में? जो कोई मजबूरी में मिल भी जाते हैं वे पढाने की बजाये ज़्यादा ध्यान अन्य बेहतर नौकरी ढूंढने व पाने पर लगाते हैं।

इन्हीं प्राध्यापकों ने बताया कि पिछले दिनों यहां उच्च- शिक्षा विभाग के आयुक्त एस.एस.प्रसाद आये थे। उनके सामने जब स्टाफ़ की कमी का प्रश्न रखा तो वे बोले कि सरकार के पास जो निश्चित रकम प्रोफ़ेसरों के वेतन हेतु रखी गयी है उसे वे चार में बांट लें या दस में। बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि मान लो इस काम के लिये 100 रुपया हैं तो उसे चाहे तो चार प्रोफेसरों में बांट लो चाहे दस में। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि बढ़ती महंगाई के कारण जब वेतन में बढौतरी होती है तो सरकार को प्रोफ़ेसरों का वेतन-बजट न बढाना पड़े। इसके लिये जरूरी है कि प्रोफ़ेसरों के पदों को भरा ही न जाये और उच्च शिक्षा का ढकोसला बनाये रखने के लिये जब-तब पढाने वालों को ऐसे पकड़ कर लाया जाये जैसे लेबर चौक से लेबर लाई जाती है।

सरकार की इस जनविरोधी शिक्षानीति के चलते कोई क्यों उच्च शिक्षा प्राप्त करके प्रोफ़ेसर बनना चाहेगा? और यदि बनना भी चाहेगा तो इस देश में क्यों बनेगा, वहां बनेगा जहां उसकी जरूर व कदर होगी। सरकार की इसी नीति के चलते उच्च शिक्षा प्राप्त लोग विदेशों का रूख करते जा रहे हैं; फ़िर सरकार 'ब्रेन-ड्रेन' का रोना रोती है।

यदि सरकार समय रहते न चेती, जिसकी कि कोई संभावना नज़र नहीं आती, देश से शिक्षा का सफ़ाया ही हो जायेगा और जिस देश में शिक्षा नहीं वहां, बेरोज़गारी, भुखमरी, अपराध व दंगे आदि ही होते हैं और देश रसातल में चला जाता है।

डॉलर के मुकाबले सस्ता रुपया जनता के हित में

सोचने वाली बात यह है कि रुपये के अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में सस्ता होने की चिन्ता शासक वर्गों को क्यों सता रही है? उनका मीडिया इसका खुलासा करता है:पैट्रोल आयात बिल बढने से निजी कारों का खर्चा बढेगा; विदेशों में छुट्टियां मनाना व बच्चे पढाना मंहगा हो जायेगा; विदेशों में जायदाद खरीदने में ज़्यादा रुपये लगेंगे; विदेशों से ऐशों-आराम की वस्तुऐं जैसे मंहगे टी वी, ए सी, कम्प्यूटर, कारें, सोना, कीमती गृहसज्जा सामग्री, विदेशी शराब/ सिगरेट; कीमती कपड़े, ब्रैंडेड, उत्पाद हासिल करने में खर्चा बढ जायेगा। सोचिये, इससे जनसाधारण को क्या लेना-देना है? दरअसल उपरोक्त वस्तुओं के मंहगे होने से फ़ायदा यह होगा कि यह वर्ग जो आज पानी की तरह पैसा विदेशों में या विदेशी चीज़ों पर बहा रहे हैं, उस पर कुछ लगाम ही लगेगी।

आइये यह भी देखें कि पिछले दशक में रुपया मंहगा कैसे होता गया है? विशेष कर वैश्विक मंदी के दौर के बावजूद। यह विदेशों में गये भारतीय उद्यमियों एवं कामगारों की हाड़तोड़ मेहनत से संभव हो सका। इस दौर में अप्रवासी भारतीयों द्वारा देश में भेजे जाने वाले डॉलर की रकम 6 गुणा से भी ज़्यादा बढ गयी है। अब रुपये के सस्ता होने से इस चलन में और तेज़ी ही आयेगी, जिससे अप्रवासी भारतीयों द्वारा भेजे जाने वाले डॉलर की मात्रा और बढेगी ही।

देश में डॉलर की मात्रा बढने से रुपया ज्यों-ज्यों मजबूत होता गया त्यों-त्यों विदेशी निवेशकों ने भी भारतीय बाज़ारों में सीधी पूंजी लगानी शुरू कर दी। उनकी सुविधा के लिये भारतीय सरकार ने विदेशी सीधा निवेश (फॅरेन डायरेक्ट इन्वेस्टमेंट) की इजाजत बढ चढ कर देनी शुरू कर दी। यहां तक कि कुछ क्षेत्रों में तो शत प्रतिशत निवेश की अनुमति तक दी गयी। आम उपभोक्ता समानों की रिटेल मार्केटिंग, जैसी गतिविधियों में विदेशी निवेश को बढा कर सरकार ने एक तरह से भारतीय श्रमिक किसान, कामगार, कारीगार, छोटे उत्पादक के पेट पर लात मारी।

सीधा विदेशी पूंजी का निवेश इसलिये भी भारत में आ रहा था क्योंकि व्यापक मंदी की मार से परेशान अमेरिका अपने घरेलू बाज़ारों को 'गर्म' नहीं रख पा रहा था। इससे वहां बेरोज़गारी का स्तर समाज में असन्तोष को गहरा करता जा रहा था। यहां तक कि विश्व की इस सर्वाधिक शक्तिशाली व्यवस्था की सेहत पर प्रश्न चिन्ह लगने शुरू हो गये थे। लिहाज़ा अमेरिकी सरकार ने गत कुछ, वर्षों से प्रति माह 85 खरब डॉलर के सिक्योरिटी ब्रांड बाज़ार से खरीदने शुरू कर घरेलू बाज़ार में डॉलर की तरलता बढोत्तरी लानी शुरू कर रखी है।

अब अमेरिकी अर्थव्यवस्था मंदी से लगभग निकल आई है और वे 85 खरब डॉलर की मासिक तरलता को बन्द करने की सोच रहे हैं। उनके सोचने मात्र ने भारतीय बाज़ारों से विदेशी सीधे निवेश को न केवल ठप कर दिया है बल्कि भारी संख्या में विदेशी निवेशक अपना मौजूदा निवेश भी निकाल कर भाग रहे हैं। इससे भारतीय शेयर बाज़ार भी, जो मुख्यत: एक सट्टा बाज़ार ही है, लुढक-पुढक हो रहा है।

आम भारतीय को इस तरह के घटनाक्रम से भला क्या नुकसान हो सकता है? यदि रुपये की अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में कीमत प्रति डॉलर 70 रुपया हो जाये तो भी क्या? देर सबेर देशी निर्यात इकाइयों में गर्माहट आयेगी ही जिससे रोज़गार बढेंगे। यहां तक कि देशी बाज़ारों में बजाये चीनी सामानों के भारतीय सामानों की मांग पुन: लौटेगी। अप्रवासी भारतीयों द्वारा अधिक डालर भेजने से देशी रीयल एस्टेट की मांग में और वृद्धि होगी। ध्यान रहे कि आज के दिन रीयल एस्टेट ही सबसे अधिक रोज़गार देने वाला क्षेत्र है।

यदि सरकार को सचमुच जनता की चिन्ता है तो उसे सिर्फ़ डीज़ल एवं एल पी जी को अधिक सब्सिडी देने की जरूरत है। इसके लिये डीजल कारों के बनाने पर तुरन्त प्रतिबंध लगाया जाना चाहिये। साथ ही सार्वजनिक परिवहन में निवेश को बढाया जाना चाहिये। पर ऐसा होगा नहीं। सरकारों को चिंता है कार्पोरेट हितों की। लिहाज़ा संसद, मीडिया समेत तमाम कार्पोरेट एवं मुनाफ़ाखोर तबके रुपये के सस्ता होने का मातम करते रहेंगे। जनसाधारण को तो सस्ता रुपया ही चाहिये, जितनी जल्दी वह 70 प्रति डॉलर की दर पर पहुंच जाये उतना अच्छा होगा उनके लिये।